॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

भगवन्! हम सदैव इस समाज में, इस सँसार में रुढ़िवाद नहीं चाहते। क्योंकि रुढ़िवाद भी मानव के हृदय में नाना प्रकार के सँस्कारों को जन्म देता है। यदि सँस्कार होंगे तो हमारा आवागमन रहेगा। आवागमन रहेगा तो ''पुनरपि मरणम् और पुनरपि जीवनम्'', हमें प्राप्त होता रहेगा। भगवन्! हम ऐसा भी नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि हम सदैव उस आनन्दमय प्रकाश में रमण करते रहें जिस प्रकाश में रमण करने के पश्चात् जहाँ न सूर्य उदय होता है और न सूर्य अस्त होता है। प्रभु! जहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है। उस महान् अनुपम ज्ञान को चाहते हैं। उस विवेक को चाहते हैं। भगवन् हम उस रुढ़िवाद को नहीं चाहते हैं क्योंकि रुढ़िवाद भी मानव के विनाश का कारण बन जाता है। इसीलिए भगवन्! हमारी यह ही प्रबल इच्छा रहती है कि हम रुढ़िवाद को नहीं चाहते। हम तो भगवन्! सदैव उस महत्ता को, उस पवित्रता को चाहते हैं जहाँ हम अन्तरात्मा के ज्ञानी बनते रहें। अन्तरात्मा को जानते हुए हमारा जीवन एक प्रतिभाशाली बनता हुआ इस सँसार-सागर से पार हो जाए।

पूज्यपाद-गुरुदेव

(यौगिक प्रवचन माला, भाग-7 प्रवचन दिनाँक 29 जुलाई, 1973)

अंक : 475 समग्र अंक : 550
वर्ष : 40 समग्र वर्ष : 46

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	1
2.	तप की मीमांसा	पूज्यपाद-गुरुदेव	3-17
3.	प्रातः काल का व्रत एवं मन्त्र		18-19
4.	ब्रह्मयज्ञ (संध्या)		20-23
5.	Dark and Bright Periods of Man's Life	पूज्यपाद-गुरुदेव	24-29
6.	The Moon and other Spheres	पूज्य ब्रह्मर्षि महानन्द जी	30-33
7.	पुस्तकों की सूची, सूचना, दान इत्यादि		34-36

शृङ्गीऋषि बेवसाईट

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के प्रवचनों की अमृतवाणी को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से वैदिक अनुसंधान समिति ने बेवसाईट का शुभारम्भ किया है जिसका पताः

www.shringirishi.in

॥ ओ३म् ॥

तप की मीमांसा

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता-परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि परमपिता-परमात्मा का यह अनुपम जो ज्ञान है अथवा इसमें जो विज्ञान है वह परमपिता-परमात्मा की महानता और उसका सर्व जगत् उसमें विद्यमान रहता है। किसी भी वेद-मन्त्र के जब मूल में पहुंचोगे तो उसमें एक कर्म चेतना हमें प्रायः दृष्टिपात आती रहती है अथवा उस चेतना का हम अपने में अनुभव करते रहते है और अपने में मानो चेतनित हो करके अपनी चेतना में चेतना का भास करते रहे है। क्योंकि ऋषि-मुनि जब भी किसी वेद-मन्त्र को ले करके प्रायः अपने में अन्वेषण करते रहे है और उस अन्वेषण करने की एक अनुपम पद्धति रही है क्या वह अपने एक एक वाक्य को ले करके उस पर मनन करना प्रारम्भ करते रहे है। परन्तु जब ये विचार आता है कि वेद-मन्त्र मानव को क्या-क्या प्रेरणा देता है। सबसे प्रथम जो प्रेरणा देता है वह कहता है **आकाशयाम भूतम ब्रहे वसु वन्धनम ब्रह्मा तपा** वेद का वाक् कहता है हे मानव! यदि तू अपने जीवन को महान और पवित्र बनाना चाहता है तो तेरा जीवन तपो में होना चाहिए। क्योंकि तेरा तप ही तेरे जीवन का एक वाहन है जैसे शब्दों का वाहन एक अग्नि कहलाती है। अग्नि जब मानो अपने शब्द को अपने ऊपर अश्वस्थ करती हुई गमन करती है तो

वह अग्नि ही शब्द का वाहन बन जाती है वह परिक्रमा करना प्रारम्भ करती है इसी प्रकार हमारा जो जीवन है। वह तपो में रहना चाहिए।

महर्षि गाडीवान् रेवक द्वारा तप की व्याख्या

वह प्रायः हमारा वेद का मन्त्र यह कहता है **तपम ब्रह्मे वसो रजम** कोई भी मानव किसी भी क्षेत्र में वह गमन करना चाहता है तो प्रायः उसका जीवन तपो में होना चाहिए और तप की विवेचना करते हुए एक समय-महर्षि यास्काचार्य से यह प्रश्न किया गया कि महाराज तप क्या है? तो महर्षि ने कहा कि मैं तो इतना जानता नहीं चलो आज देखो हम गाड़ीवान-रेवक के द्वार पर गमन करते है वहां यह प्रश्न करेंगे। अब वहां से जब उन्होंने गमन किया तो गाड़ीवान-रेवक के द्वार पर पहुंचे और गाड़ीवान-रेवक ने ऋषि-मुनियो का स्वागत किया और यह कहा कि महाराज यह तप क्या है? गाड़ीवान-रेवक ने यह कहा **तपम भगो वर्ण सुतम जानाति अस्चताम् देवत्वाम्** मानो यह जो तुम्हारा प्रसंग है ये तप क्या है? **तप कहते है ज्ञान में तपायमान रहना और अपनी इन्द्रियों को ज्ञान में तपाने के पश्चात् मानो उसका ज्ञान ही उसकी प्रतिभा उसका तप कहलाता है**। तो इसीलिए यदि तुम तप का प्रसंग लेते हो तो तप उसे कहते है जो मानव अपने शत्रु और मित्र को, जान सके और जानने के पश्चात् मानो शत्रु और मित्र को दोनों को एक सामान्य दृष्टिपात् करने का नाम तप कहा जाता है। नेत्रों से दृष्टिपात किया जाता है, शब्दों से उद्गीत गाया जाता है और मुनिवरो! देखो वह अप्रणाम ब्रहे नेत्राम भूतम सकरम्भम् ब्रह्म वह अपने में सुगन्धित भी होता रहा है। तो यहां वेद का मन्त्र, वेद का ऋषि यह कहता है **कि तप कहते है जो मानव अपनी इन्द्रियों को जान करके उनको विजय कर लेता है और विजय करके वह परमात्मा के राष्ट्र में स्वतंत्र रूप से वर्णन कर सके और ज्ञान और विज्ञान से अपने को कटिबद्ध करने का नाम तप है**। मेरे प्यारे! देखो वेद-मन्त्रो में नाना प्रकार की प्रतिभाओं का प्रायः वर्णन होता रहता है। तो तप की मीमांसा करते ऋषि कहते है कि तपो ब्रह्मण वर्ण **ब्रह्म को**

जानने का नाम तप है। ब्रह्म-ज्ञान में तपायमान होना वह तपो में मानो परिणीत रहता है परन्तु जब और गम्भीरता में प्रवेश करोंगे तो **अन्तकरण में रजोगुण, तमोगुण के संस्कारों को क्षय करने का नाम तप है।**

भगवान् राम का तपस्या के लिये आग्रह

बेटा! मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जब भगवान राम ने लंका को विजय करने के पश्चात् अयोध्या के लिए गमन किया। तो जब वह गमन उन्होंने किया तो मुनिवरो! वह नाना प्रकार की यातनाएं अपने में सहन करते, भ्रमण करते हुए अयोध्या में गये। अयोध्या नगरी के जितने प्राणी-मात्र थे वह इस प्रतिक्षा में है कि राम का पर्दापण होगा और वह हमारे धिराज बनेंगे। मेरे पुत्रो! देखो इतने में उनका पुष्प विमान आ गया और लंकाम भूते ब्रहेस्वञ्जनम लंका वास ब्रहीक्रतम और अयोध्या वासियों ने उनका स्वागत किया कि लंका से स्वामी का पर्दापण हो रहा है। मेरे प्यारे! देखो जब वह आये आने के पश्चात् उन्हें ऊर्ध्वा कक्ष में, राष्ट्रीय कक्ष में उनका शयन कराया और सब का बारी-बारी मानों देखो उनसे मिलन हुआ। मानो देखो भरत का एक ही प्रसंग था कि महाराज मैंने आपके कथनानुसार कर्तव्य का पालन किया है अब मैं इस राष्ट्र को नहीं चाहता इस राष्ट्र को अपनाईये। राम ने कहा कि हे भरत तुम्हारा एक ही प्रसंग रह गया है परन्तु मेरे समीप यह प्रसंग नहीं है। उन्होंने कहा प्रभु! आपका क्या प्रसंग है? क्या मेरा यह प्रसंग है तमो वर्णन ब्रहे क्रतम मेरी जो वृत्तियां है वह तमोगुण में रही है और मैं उन तमोगुणी प्रवृत्तियों को शान्त करना चाहता हूं और तमोगुण की प्रवृत्तियां शान्त होने के पश्चात जब सतोगुण रूप पूर्ण-रूपेण मेरे अन्तःकरण में प्रवेश कर जायेगा तो उस समय कहीं मैं देखो राष्ट्र का अधिकारी बनूंगा। क्योंकि हर प्राणी को अपना-अपना अधिकार होता है वह किस अधिकार का प्राणी है उसको यदि वह अधिकार प्रदान किया जाये तो देखो उस अधिकार को ले करके अपने में महानता का दर्शन कराए और यदि वह अधिकारी है नहीं उसे वह वस्तु प्राप्त हो जाये तो अन्धकार में ले जाता है तो इसलिए

भरत मैं राष्ट्र को अन्धकार में नहीं ले जाऊंगा। मेरा तो एक ही मन्तव्य है कि मैं अपने को तमोगुण से दूरी ले जाऊं, रजोगुण से मेरा उपराम हो जाये परन्तु भरत शान्त हो गये।

तप की महत्ता

मेरे प्यारे! देखो वह अपने में अगला दिवस हुआ दिवस के पश्चात् उन्होंने यह घोषणा कर दी। क्या हमारे जो वंशलज हुए है, हमारे जो पूर्वज हुए है वह सब तपस्वी रहे हैं। राजा-सगर ने भी राष्ट्र से पूर्व तपस्या की और सुखमन्जस उनके पुत्र थे उन्होंने भी तपस्या का जीवन व्यतीत किया और देखो और भी नाना जो हमारे वंशलज हुए है वह सारे तपस्वी थे। महाराज-दिलीप जी तो कामधेनु के पीछे ही बारह वर्ष तक देखो उसके घृत में, दुग्ध में याग करना और जहां वह जाती वही उनका गमन होता, वही उसके दुग्ध का आहार करते। सतोगुणी-बुद्धि बन जाने के पश्चात् ही मानो उसे अधिकार को अधिकार प्राप्त होता है। तो बेटा! देखो राम ने जब यह कहा कि मैं तपस्वी बनूंगा तो उन्होंने सब राजाओं को निमन्त्रित किया। भरत ने ये निमंत्रित इसलिए किया कि राष्ट्र कोई भोगे तपस्या नहीं। मेरे प्यारे! देखो सब राजा निमन्त्रण के कथानानुसार अयोध्या में सबका आगमन हुआ महाराजा-शिव भी उसमें थे। जब मुनिवरो! देखो सर्वत्र देवत्वा देव के समान जितने प्राणी थे, राजा थे, वह सब विराजमान हो गये और विराजमान होने के पश्चात् उनकी सभा हुई। राज्य-सभा और सभा में यह प्रसंग आया कि मैं वेद का मन्त्र उद्गीत गाते हुए उन्होंने कहा राजनम तपम ब्रहे वणुस्ता तपो हिरणयम रथा हे प्रभु! मैं तपो में जा रहा हूं मुझे आज्ञा दीजिए। उन्होंने कहा तप किसे कहते हैं? यह तपो वर्णनं ब्रह्मा आत्माम भूतम ब्रहे ब्रहा क्या देखो **इस आत्मा से इन्द्र को जानने का नाम तप है।** उन्होंने कहा चलो प्रियतम जब मुनिवरो! देखो सब राजा एकत्रित हो गये और महात्मा-वशिष्ठ-मुनि-महाराज को उस सभा का सभा पतित्व दिया गया। उन्होंने अपने सभा पतित्व को महाराजा-शिव को प्रदान किया क्या देखो

मैं इस योग्य नहीं हूँ मैं राज्य सभा के लिए मैं अपना निर्णय दे सकूं यह निर्णय तो जिसे निर्णय देना वही दे सकेगा। मेरे प्यारे! देखो सभा प्रारम्भ हो गई। सभा में यह प्रसंग आया कि राजनम शिव ने कहा महाराज आप राज को भोगिये राज के भोगतव्यवादी बनो क्योंकि प्राणी आहार करता है, प्राणी भोगता है, प्राणी भोगतव्य है मानो वहीं भोगता रहता है मानो संसार को निगल जाता है। जो प्राण-सत्ता है कि ऐसी सत्ता है कि जो संसार को निगल जाती है अपने में धारण कर लेती है। तो इसी प्रकार वह भी तपो ब्रह्मणे तपाम ब्रह्मे वसु धेनु सता मानो देखो मैं तप करने अमृतम तपम ब्रहे मैं तप करने जाऊंगा। जब राम ने यह कहा कि मैं तप करने जाऊंगा तो महाराजा-शिव ने कहा हे राजन! तुम तपस्या क्यों करना चाहते हो राम? उन्होंने कहा प्रभु! आपको तो प्रतीत है, आप तो धिराज है आपका कई समय दैत्य और देवताओं का संग्राम हुआ है परन्तु संग्राम में विजय करना हमारा कर्त्तव्य है। तो इसीलिए मैं मानो देखो तपस्या में परिणीत होना चाहता हूं तपो गन्धर्वाम भूतम ब्रह्मे असुतम तवाम ब्रह्मे वाचा उन्होंने कहा राम तुम तपस्या करने तो चले जाइये परन्तु मैं तप को जानने के लिए हम सब अवश्य इच्छुक है, क्या तुम्हारे हृदय में तप की मीमांसा अर्न्तहृदय में क्यों जागरूक हुई। तो राम ने कहा प्रभु! आपको यह प्रतीत है कि मैं लंका को विजय करके आया हूं और देखो विजय जब होती है तो उसके अन्तरात्मा, अन्तःकरण में संस्कार होते हैं रजोगुण के, तमोगुण के, सतोगुण के मानो बहुत सूक्ष्म रहते है। तो वह जो संस्कार है मेरे उन संस्कारों के आधार पर मानो देखो मैं अपने में तपो में प्रवेश करना चाहता हूं जिससे मेरा जीवन एक महानता को प्राप्त हो सके।

महाराजा-शिव का निर्णय

मेरे पुत्रों! देखो जब तप के लिए इतना वाक् कहा तो उन्होंने भिन्न-भिन्न विचार लेना प्रारम्भ किया। महाराजा-शिव से कहा कि महाराज राम तपस्या करने जा रहे है राज को भोगे या तपस्वी बने। तो महाराज-शिव

ने कहा कि तपस्या पूर्व है राष्ट्र पश्चात है क्योंकि राजा जब तपस्वी हो जाता है तो प्रजा में अनुशासन हो जाता है इसलिए राजा का होना बहुत अनिवार्य है तपस्याम भूतम तपस्या होना बहुत अनिवार्य है। क्योंकि बिना तपस्या के राष्ट्र का निर्माण नहीं होता बिना तप के मानव ऊंचा नहीं बनता, बिना तपस्या के माता सन्तान को उपार्जन करने का भी अधिकार नहीं होता। मेरे प्यारे! देखो इसलिए **प्रथम तप है तप के पश्चात् यह संसार माना गया है।** मेरे पुत्रों! देखो जो इस प्रकार वार्ता प्रगट की महाराजा-शिव ने कहा क्या मैं भी जब यह जानता हूं कि अब राष्ट्र में किसी प्रकार की अशुद्ध क्रान्तिया या अशुद्ध प्रेरणा से प्रेरित यह समाज बन गया तो मैं भी तपस्या करने चला जाता हूं क्योंकि तप से मानव का अभिमान नष्ट हो जाता है, तप करने से घृणा-वादी नहीं रहता तपस्वी प्राणी के हृदय में साम्यता का देखो बोध होता है वह उससे बोधित हो करके अपने जीवन में एक अनुपमता को जन्म देते है। तो मुनिवरो! देखो महाराजा-शिव ने अपना यह निर्णय दिया कि राम को तपस्या करने चला जाना चाहिए क्योंकि राष्ट्र और समाज जब भी तपस्या में परिणीत होते है तो वह राजा के तप से ही होते है। यदि राजा में तप नहीं है, क्रियाकलाप नहीं है तो वह शून्य गति को प्राप्त हो जाते है।

तपस्या का निर्णय

मेरे पुत्रो! **मैं बड़े आश्चर्य की वार्ता प्रगट करा रहा हूं** आज तुम्हें यह प्रतीत है कि राम तपश्यम ब्रह्मे महाराजा-शिव ने कहा कि राम यदि तुम तपस्या के लिए न जाओ तो बड़ा प्रिय है। राम ने कहा प्रभु! मैं क्यों न जाऊं तपस्या के लिए मुझे तो अपनी आत्मा को बलिष्ठ बनाना है और जो आत्मा को बलिष्ठ बनाता है मानो देखो समब्रही वह अपनी व्रणा प्रवृत्ति से उपरामता को प्राप्त हो जाता है। तो मेरे पुत्रो! देखो यह निर्णय दिया तो वशिष्ठ-मुनि-महाराज से विचार लेना प्रारम्भ किया। महाराजा-वशिष्ठ से कहा कि महाराज कुछ आप अपनी प्रेरणा दीजिए आपका वचन क्या कहता है। महर्षि-वशिष्ठ-मुनि बोले मेरे विचार में तो

यह आता है कि राष्ट्र का भोगत्व राम को बनना चाहिए परन्तु जब तक तमोगुणी प्रवृत्ति रजोगुणी है तब तक उसका अधिकार उसे प्राप्त नहीं होगा, तो जाओ तपसचम् ब्रह्मणां ब्रहे तो मानो देखो राजा हो, तपस्या करो बिना तप के राष्ट्र को ऊंचा नहीं बनाया जा सकता, बिना तप के गृह ऊंचा नहीं बनता, बिना तपस्या किए बिना देखो राष्ट्र ऊर्ध्वा को प्राप्त नहीं होगा। मेरे पुत्रों! देखो जब महाराजा-शिव ने यह कहा कि मेरे हिमालय नामक राष्ट्र पर जब मैं राज करता हूं तो प्रायः देखो सब मौन हो जाता हैं सम्भूति ब्रह्मा सम्भूति लोकाम यह सर्वत्र मानो लोक लोकान्तर अपने में गतिवान हो जाते है। तो मेरे पुत्रो! देखो जब यह वाक् श्रवण किया सर्वत्र ने, तो विचारा गया कि राम को तपस्या करने चला ही जाना चाहिए। वशिष्ठ ने भी यह आज्ञा दी, विश्वमित्र ने भी यही कहा है कि तप से मानव का जीवन बनता है, तप से समाज बनता है।

भगवान-राम का वन गमन

तो राम, बेटा! देखो जब जाने लगे तो भरत ने कहा प्रभु आपाम तपो ब्रह्मे मैं तप को चला जाता हूं प्रभु! आप राष्ट्र को अपने में भोगतव्य करें। तब जब यह वाक् आया तो उन्होंने सम्भवा तपश्चम ब्रह्मणा तपो देवत्वाम तपो हिरण्यम ब्रह्मा जब राष्ट्र की और सबकी आज्ञा पाने लगे बेटा! मैं तप करने जा रहा हूं। बेटा! हृदय पुनः से शून्यता को प्राप्त होने लगा, प्राणी मात्र ने कहा प्रभु! राम को अनाथ बना करके तुम यहां से गमन कर रहे हो। मेरे पुत्रों! देखो वह भी अपने में मौन हो गये वह भी मौन हो गये और राम तपस्या के लिए वन चले गये। और राम ने अपना हेतु यही दिया कि मेरी प्रवृत्ति रजोगुणी अन्नो से मानो परिपक्व हो रही है मैं इस अन्न के बिना अन्न को पान करके तपस्या में परिणीत हो सकता हूं। मेरे पुत्रों! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है तप करने जब गये तो महर्षि-वशिष्ठ-मुनि-महाराज उनके समीप और भी नाना कुछ ब्रह्मचारी वहां से गमनम ब्रहे गमनम सुता वह वहां से गमन कर गये,

भयंकर वनों में बेटा! तप करने लगे। तप किसे कहते है **इन्द्रियों के विषयों को जानने का नाम तप है।** आगे कहा कि तप क्या है? वह कहते है कि **मन को वशीभूत करने का नाम तप है।** द्वितीय दार्शनिक कहता है कि तपस्या तपने से उसका समन्वय रहता है तपो में हिरणयम ब्रह्मा हिरण्यम ब्रह्मा तपाहा क्या यह मानो यह संसार अपने मे तपायमान हो रहा है तपश्चम ब्रह्मा तपमलोकाम तपम हिरण्यम ब्रह्मे क्रतम बेटा! इन्द्रियों के विषय को जानने लगे भयंकर वन में और वह अन्नाद भूतम ब्रह्मे देखो **अन्न से मानव की बुद्धि का, मन का निर्माण होता है** क्योंकि मन प्रकृति का सूक्ष्म-तम तन्तु माना गया है तो मानो देखो उसी सुक्ष्म तन्तु के आधार पर वह मन को पवित्र बनाने में लग गये, इन्द्रियों को संयम में लाने में लग गये। तो मेरे प्यारे! देखो अपने में उन्होंने विचार-विनिमय किया और विचार-विनिमय करके विचाराम भूतम ब्रह्मे वाण सुत देवत्वम ब्रह्मा वह तप करने के लिए भयंकर वन में बेटा! देखो कहीं उस अन्न का सेवन करते रहे जो वायु-मण्डल में तरंगों में रमण कर रहा है। एक भोज्य अन्न में रहता है एक मानो देखो भोज्य जल की अवृत्तियों की धारा में रमण करता रहता है। मानो देखो अग्नि की तरंगों में जो तरंगित हो रहा है वह भी अन्न है। वह प्राणायाम करते हुए कहीं भस्त्रिका के द्वारा, कहीं शीतली प्राणायाम के द्वारा वह प्रायः अपने मन को पवित्र बनाने में लग गये। अन्तःकरण के जो संस्कार रजोगुणों, तमोगुणी उनको नष्ट करने में परिणीत हो गये।

भगवान् राम की तपस्या

बेटा! मुझे स्मरण है कि राम ने जब इस प्रकार तपस्या करनी प्रारम्भ की इस समय अनुष्ठान किया छः माह का। छः माह के अनुष्ठान में उन्होंने केवल जल का सेवन किया और वायु का सेवन किया। परन्तु छः माह तक देखो उन्होंने अग्नि के परमाणु और जल के परमाणुओं का समन्वय करते हुए उसको अपने में सिंचन किया। बेटा! मन पवित्रतता की आभा में परिणीत हो गया। मन पवित्र बनने लगा, प्रभु का यशोगान

गाते है। वशिष्ठ इत्यादि मुनि देखो आश्रम में गमन करते रहे। पर ब्रह्मण प्रणाम भूते प्रेतम ब्रह्मा तपाम मेरे प्यारे! देखो वह अपनी प्रवृत्तियों को तपो में ले गये। ऐसा स्मरण आता रहता है देखो **रजोगुण, तमोगुण केवल अन्नाद के द्वारा ही समाप्त होता है प्राण को अपने संग का साथी बना करके समाप्त होता है।** बेटा! मैं साधना की चर्चा तो तुम्हें नहीं दूंगा, केवल विचार-विनिमय यह कि हम साधक बने और साधना में तपस्या का आश्रय ले और तपस्वी बन करके ही हम अपने जीवन को ऊर्ध्वा में प्रवेश करा सकते है। विचार आता है तप किसे कहते है, तप कहते है मनोवान्छन जगत प्रीत मानो देखो **तप उसे कहते है जो अशुभ-शुभ प्रेरणा है, अशुभ प्रेरणा के आधार पर हम सर्वत्र विनाशता को प्राप्त हो जाते है।** परन्तु देखो जब तवम भूतम ब्रह्मे वह तप में परिणीत हो गये तो **तप ही मानव का जीवन है।** मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है राम के द्वारा नाना ऋषिवर उनके चरणों की वन्दना करने के लिए उनका आगमन होता रामभ भूतम राम उनको अपनी सुकामना देते। प्रजा में एक तरंगवाद उत्पन्न हो गया तो वह तपो हिरणयम तपम ब्रह्मा वह तप में परिणीत हो गये क्योंकि वह हिरण्य गर्भ थे, जैसे परमपिता-परमात्मा का जगत है वह हिरण्य है, हिरण्य जन्म ब्रह्मे हिरण्य ब्रही अपने में मानो देखो अपने में रत्त होता चला जाता है अभ्यम देवा भ्रमम ब्रह्मे अहम स्द्रो अहम भावा क्रति देवा मानो उसी समय के दान अमृति को प्राप्त करने के पश्चात् मानव का जीवन एक मानवीयता में परिणीत हो जाता है।

भगवान् राम का पुनः अयोध्या आगमन

राम ने, बेटा! बारह वर्ष का तप किया और बारह वर्ष के तप के पश्चात् वह अयोध्या में आये और अयोध्या में बेटा! उन्होंने भरत को निमन्त्रित किया। महर्षि-वशिष्ठ-मुनि-महाराज उससे पूर्व आ गए। वशिष्ठ-मुनि-महाराज ने कहा राम तुम्हारा तप पूर्ण हो गया। राम ने कहा प्रभु! आपकी अनुपम कृपा है सम्भूति देवाम सम्भूति लोकाम वाचन

स्वजनम ब्रहे। उन्होंने कहा प्रभु! आप अपने राज को भोगिये, उन्होंने, राम ने कहा यह राज भोगने की वस्तु नहीं होती भरत, यह राष्ट्र तो मानो देखो सेवक बनने की वस्तु होती है। जब राष्ट्र में सेवक बना जाएगा दूरी जा करके तो वही **शब्दम गमनम ब्रह्मे शबदम दिव्यम भूतम ब्रह्मा वाणसुति देवत्वाम ब्रह्मे** हमारे यहां आख्यिका यह कहती है। विचारों की क्या उन्होंने जब राम ने यह कहा कि तप करने का सुयोग्य अधिकार मुझे मेरे प्रभु! ने मुझे प्रदान कर दिया है मैं उसी के आश्रित रहता हूं। तो बेटा! मुझे स्मरण है जब उन्होंने ऐसा कहा तो बड़े प्रसन्न हुए और देखो भरतम ब्रह्मे सब कुछ प्रसन्न करके राम को राजा बनाया गया। उसके पश्चात् जब राजा बना जब भी राजा-महाराजा और महाराजा-शिव उस समय विद्यमान थे। उन्होंने विभाण्डक को निमन्त्रित किया और जब विचार-विनिमय होने लगा तो उनका विचार क्या कि देखो प्रजा को सुखद बनाया जाये। जब प्रजा सुखद होगी उसी काल में हमारे राष्ट्र का जीवन पवित्र बनेगा और हम सफलता को प्राप्त होंगे तपो ब्रह्मणे तपा मेरे पुत्रो! देखो इतना उदगीत गा करके राम ने अपनी राज्य सभा में अपना एक उपदेश प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा हे राजाओं!, हे धिराज! शिव-महाराज मैंने यह आपके कथानानुसार यह अपनाया है परन्तु मेरा प्रजा को एक सन्देश है। सबसे प्रथम प्रजा में क्या-क्या गुण होने चाहिए जो मैं यहां से घोषित कर रहा हूं। देवी ने कहा कहिए उद्गीत गाने के लिए हम सदैव तत्पर है सम्भूति ब्रह्मा सम्भूति लोकाम अग्नि ब्रह्मणा वस्तुते। यह ब्रह्माग्नि है जिसके मानो देखो ब्रह्म की अग्नि ब्रह्म में समाहित हो जाती है परन्तु पंच-महाभूतों से संकल्प धारण करने वाले को मानो देखो पृथ्वी का रूप कहा जाता है। बेटा! मैं बहुत दूरी चला गया हूं। विचार यह दे रहा हूं कि हम अपने में तपस्वी बने और तप किसे कहते है मन, वचन देखो मन-मस्तिष्क और वचन सबको पवित्रता की वेदि पर ले जाना। बेटा! राम अपनी राज्य सभा में उपस्थित हो गये नाना ऋषिवर उनसे समन्वय करने के लिए, मिलान करने के लिए अपने आसन को त्याग करके कजली-वनो से आ गए। वह बड़े प्रसन्न हो गये, प्रसन्न युक्त

हो करके कहा सम्हा मंगलाह भवे राजनमम ब्रह्मे भरत ने यह कहा हे प्रभु! अब आप इस राष्ट्र पर शयन कीजिए राम ने कहा बहुत प्रियतम ऐसी ही मेरी विचारधारा बन गयी है।

तप से ऊंचा जीवन

तो मुनिवरो! देखो मुझे वह काल स्मरण है कि संसार में जब तक तपेगा नहीं जीवन ऊंचा नहीं बनेगा चाहे वह गृह में प्रवेश करने वाला हो, चाहे वह राष्ट्रीयता को अपनाने वाला हो, चाहे सामाजिक जीवन हो, चाहे आध्यात्मिकवेत्ता हो। तो मुनिवरो! देखो तप के बिना जीवन नहीं बनता। माता अपने में तप करती रहती है तो उसका तपस्वी जीवन है, सन्तान का जन्म होना कोई आश्चर्य नहीं परन्तु उसको प्रजा बना देना ही आश्चर्य है। तो मानव को अपने में तप करके अपने को बनाना चाहिए, रजोगुण, तमोगुण की जो प्रवृत्ति उन्हें शान्त कर देना चाहिए। राम ने कहा है, क्या महाराज मेरी प्रवृत्ति अपवित्र बन गई मैंने बारह वर्ष का अनुष्ठान किया कुछ समय वायु का सेवन किया कहीं अन्नाद का सेवन किया मानो देखो इसी प्रकार मैं पाता हुआ दूरी चला आया हूं। सम्भूति लोकाम सम्भूतिवर्णनं वाचसुतम ब्रह्मे लोकाम वायु सम्भवा देवा। मेरे प्यारे! देखो राम ने महाराजा-शिव के कथनानुसार प्राय उस याग का प्रारम्भ किया दिव यज्ञजनम देवा यज्ञञ्जन्म दिव्या यञ्जनम देवा प्रणम ब्रहे क्रतम देवा। मेरे पुत्रो! देखो मैं तुम्हें यू उद्गीत गा रहा हूं क्या मानव को तपस्वी बनना चाहिए क्योंकि बिना तप के राजा राष्ट्र को ऊंचा नहीं बना सकता और यदि तप नहीं है तो वह राजा नहीं और तपस्वी बन करके किसी क्रियाकलाप को करना अधिकार अनधिकार को न विचार करके यह वरण होगा तो मानो देखो वह विचार कोई विचार नहीं होता, **विचार तपस्वियों का होता है।** तो मेरे प्यारे! देखो राम अपने में राज करते रहे और संघर्ष भी प्रजा के समीप होता रहा, भिन्न-भिन्न प्रकार का संघर्ष होना एक स्वाभाविक्तम माना गया है। मेरे प्यारे! देखो मैं अभी-अभी उद्गीत गा रहा था हे उद्गानम भूतम हे उदगानम भूतम

ब्रह्मे व्राचसुतम ब्रह्मा एक ब्रह्मज्ञानी है ब्रह्म के ज्ञान में तपता रहता है। एक मानव पृथ्वी के गुणों में दृष्टिपात करता है उसे प्रभावित कर देता है परन्तु कोई भी मानव हो किसी प्रकार का वह साधना में प्रवेश करना चाहता है तो उसको उन गुणों को अपनाना बहुत अनिवार्य है। जिससे जीवन एक महान से महान बन जाये और पवित्रत्व में रमण करता हुआ इस सागर से पार होने का प्रयास करें। बेटा! राम अपने अयोध्या में अपना प्रवेश करते हुए और प्रवेश करके बेटा! उसी में वह उसी में अमृता तत्त्वों को प्राप्त करते रहे। तो आओ मेरे प्यारे! यह तो ऋषि का अपना मन्तव्य है क्या वह सर्वभूताम भूतम ब्रहे क्या यह जो संसार है सब एक प्रकार का भूतज्ञ कहलाता है। भूतज्ञ उसे कहते है जो वर्तमान में कुछ दृष्टिपात हो रहा हो, वृद्धपन में कुछ और दृष्टिपात हो रहा है। अपने-अपने आहार जैसे किया जाएगा उसी प्रकार मानो देखो उसकी प्रतिभा का जन्म होता रहेगा। तो मन-मस्तिष्क एकाग्रता की वेदी पर होने चाहिए। बेटा! तपस्वी राजा ही राष्ट्र को सुखद अनुभव करा सकता है। यहां एक रावण का राज्य है जो रावण के राष्ट्र में कोई सुविधा भौतिक ऐसी नहीं जो न थी। वह भौतिकवाद में, त्रेतवाद में रमण करते रहे। मुनिवरो! देखो उत्सुकता केवल यह कि **ऊंचा जब बनते है जब ऊर्ध्वा में गमन करने के पश्चात वह ध्रुवा की प्रतिभा मे रत्त हो जाते है।**

भगवान् राम का राष्ट्र निर्माण

मेरे पुत्रो! देखो राम ने अपने राष्ट्र को अपनाया भरत को सहायक बनाया, लक्ष्मण को आज्ञा भूतक बनाया और उन्होंने अगले दिवस बेटा! राष्ट्र का निर्माण करना प्रारम्भ किया। राष्ट्र की प्रतिभा में बड़ी ऊर्ध्वा में सभा होना राम ने सबसे प्रथम अयोध्या के नगर वासियों की सभा की और यह राम ने कहा तुम्हें प्रतीत है मैंने तुम्हें क्यों एकत्रित किया है। प्रजा ने कहा प्रभु! यह हमारा सौभाग्य है और हम सौभाग्यशाली है जो मानो देखो आपकी संरक्षण में हम पालना के मूल में विद्यमान है। मेरे पुत्रों! देखो राम ने कहा हे अयोध्यावासियों! तुम्हारा मैं सेवक हूं मैं

राजा नहीं हूं, **तपस्वी जो होता है वह समाज का, संसार का, प्रभु का सेवक होता है वह किसी की प्रजा नहीं होता** इसीलिए मैं प्रजा नहीं हूं मैं प्रजावान नहीं हूं, केवल मैं अपने आभा के दो शब्दों को उद्गीत गाने के लिए आया हूं। तो विचार-विनिमय क्या स्वन्धनम देहि क्रताम राम ने बेटा! नाना प्रकार के अपने क्रियाकलाप प्रारम्भ कर दिए। अस्पुतम देवा उन्होंने सबसे प्रथम सभा में यही कहा हे राम! तुम सहयोग दो और सहयोग से अमृता को प्राप्त हो जाओ, प्रजा ने यह कहा। प्रजा को राम ने यह कहा प्रजाओ तुम अमृत बन जाओ, और राष्ट्र को अमृतमयी परिवर्तित कर दो। राम के और प्रजा के दोनों के विचार एक-दूसरे के मानो देखो पूरक थे। धामनि ध्वञ्जनम धामानिभूतम अव्यवनाम देवत्वाम देवा मेरे पुत्रों! देखो राम का जो शब्द है वह अद्वितीय है और प्रजावासियों, अयोध्यवासियों से यही कहा कि हमारे जो पूर्व राजा हुए है, वंश है वह सब तपस्या में परिणीत होते और मैंने भी तपस्या की है तपो हिरण्यम तपाम ब्रह्मे वह मानो देखो तप में मैं रत्त होना चाहता हूँ। उन्होंने बहुत प्रियता की आभा प्रगट करते उन्होंने कहा कि हे भगवन! आपाम देवम बहुअतम आपाम रोहअमणी कृतम देवत्वाम कर्णा वर्णसुते उन्होंने कहा कि राजा को चाहिए की वह प्रजा और राजा दोनों सम्मलित हो करके अपने क्रियाकलापों में तत्पर हो जाये मेरे पुत्रों! उन्होंने वैसा ही स्वीकार किया। प्रजावान बनना सन्तान उत्पन्न होना यह सब हमारे वैदिक-साहित्य में प्रायः आता रहता है। तो मानव को प्रजावान बनना चाहिए क्योंकि प्रजावान बन करके ही देखो स्वतः प्रजापति को सुखद बना सकते है। तो हम ब्रह्मणा ब्रह्मणे क्रतम देवतो ब्रह्मा मेरे प्यारे! देखो हम राजा अमृतम राम ने कहा कि हम राजा नहीं सेवक है। **प्रजा की जो सेवा करना जानता है वह राष्ट्रीय ऋण से अवऋण हो जाता है** तो वह अवऋण होना चाहिए। प्रत्येक मानव को अपने में अपनेपन का भान होना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो बारह वर्ष का अनुष्ठान राम ने किया उसके पुनः अयोध्या में उनका आगमन हुआ और अयोध्यावासियों को वह राष्ट्र की शिक्षा क्या तुम्हें अश्वमेघ-याग करना है। अश्व कहते राजा को और

मेघ कहते है प्रजा को, जो मिलन हो करके याग करता है, विचारक, एक दूसरे के विचारों से सहमत हो जाता है एक दूसरे के विचारों में तन्मय हो जाता है बेटा! वह महान् विचारक है और वह बड़ा सौभाग्यशाली है। मुनिवरो! देखो इस प्रकार प्रत्येक मानव अपने में गुणगान गाना चाहता है। धारयामि वर्णनं ब्रह्मा ध्रुवो सम्ब्रहे वह धारयामि बनना चाहता है। मेरे पुत्रो! मैं कोई व्याख्यता नहीं हूं मैं केवल तुम्हें यह विचार ले करके चला हूं कि मानव अपनी इन्द्रियों को परिपक्व बनाता हुआ और राष्ट्रीयता और राजा हो तो राष्ट्र का पालन करें और राष्ट्र में किसी प्रकार की अशुद्धिया न हो।

यह बेटा! आज का हमारा मन्तव्य है। यह क्या कह रहा है कि हे अयोध्यावासियों! तुम अपने राष्ट्र को अपनी राष्ट्रीयता को ऊंचा बनाओ पुनः से उन्होंने वैसा ही किया तपस्या में महानता को प्राप्त होने लगे। मेरे पुत्रो! उन्होंने राष्ट्र का जो अधिकारीपन स्वीकार किया तो इसलिए राजा को यह अधिकार होता है जब तक वह तपस्वी नहीं, विचारक नहीं है तब तक वह राष्ट्र का अधिकारी नहीं है। जैसे माता का पुत्र है माता का पुत्र इसी प्रकार के दर्शनों में रत्त होता है परन्तु देखो वह अपने से दूरी नहीं जाना चाहता। अपनाम भूतम ब्रह्मे अपनाम ब्रही प्रायः अपना ही संसार में सर्वत्र है अपनेपन में हृदय निहित रहे और महानता की ज्योति का दर्शन कराता रहे बेटा! देखो वह महान कहलाता है। तो यह आज का हमारा विचार क्या कह रहा है, हम परमपिता-परमात्मा की अराधना करते हुए वह परमपिता-परमात्मा राष्ट्र का स्वामी है और राष्ट्र का स्वामित्व से राष्ट्र में एक महानता का जन्म होता है जब नेतवाम भूतम ब्रह्मा वासु सम्भवा महानता की ज्योति जब ही उत्पन्न हो जाती है जब तपस्वी प्राणी आ जाते है अपने पूर्वजों की आभा को प्राप्त करते हुए महाव्यापी बन जाते है और बन करके ही मुनिवरो! वह महानता का दर्शन कराते है। तो विचार क्या मुनिवरो! राम ने बारह वर्ष का तप किया वशिष्ठ और महाराजा-शिव की आज्ञा से और प्रजा को वह राष्ट्रीयता की आभा में ले जाने का प्रयास किया।

बेटा! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूं **विचार यह देने के लिए आया हूं कि प्रत्येक मानव को अपने विचारों में, अपने में तपस्वी बनना चाहिए क्योंकि प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को जानना, उनका शाकल्य बना करके खरल करके, बेटा! उसको हृदय में प्रवेश करा देना चाहिए। हृदयम भूवम ब्रह्मा** अरे! हृदय से ही तो मानव देखो प्रीति करता है, हृदय में ही तो संसार समाहित हो जाता है, हृदय में ही मुनिवरो! देखो सर्वत्र राष्ट्र के राष्ट्र समाहित हो जाते है। यह है बेटा! आज का वाक्। अब समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे।

अच्छा भगवन्!

दिनांक 15-1-1992
स्थान : मकनपुर, गाजियाबाद

चतुर्वेद ब्रह्म-पारायण महायाग

परमपिता परमात्मा की अनुकम्प कृपा से एवम् पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की शुभ प्रेरणा व आशीर्वाद से ग्राम दान्दुपुर निवासी अपने ग्राम दान्दुपुर में शिव मन्दिर के प्रागंण में दिनाँक 20 मई 2012 से 27 मई 2012 तक चतुर्वेद ब्रह्म-पारायण महायाग का आयोजन श्री गुरुवचन शास्त्री जी के ब्रह्मतत्त्व में आयोजित कर रहे हैं। इसमें आप सभी अपने सम्बन्धियों व मित्रों सहित सादर आमंत्रित हैं।

निवेदक :
समस्त-दान्दुपुर निवासी

॥ ओ३म् ॥

प्रातः काल का व्रत

ओ३म् प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्यानिधत्ते। तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ ऋ० १।१२५।१॥

व्रतपते बल के भण्डारा, प्रातः काल में पुत्र तुम्हारा।
तव चरणन में चित्त देता हूँ, सुन्दर समय पर व्रत लेता हूँ।
दिन भर मैं न पाप करूँगा, साँय-प्रात जाप करूँगा।
सब अँगों को वश में करके, शुभ मार्ग में सदा विचर के।
कर्म मैं वेद अनुसार करुँगा, शुभ कर्मों से प्यार करूँगा।
धर्मपूर्वक करूँगा गुजारा, केवल तेरा रहे सहारा।
पर उपकार में रहे जीवन, धन बल तेरे कर दूँ अर्पण।
जब ही मन में पाप समावे, जब भी बुद्धि कुमार्ग पर जावे।
तब ही दया अपार दिखाओ, पाप कर्म से प्रभु बचाओ।
प्रातः काल तुझे नित ध्यावें, आलस्य निद्रा दूर भगावें।

प्रातः काल के मन्त्र

ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ ऋ० ७।४१।१॥

प्रातःकाल की मधु-मेला में, शरण तुम्हारी आये हैं।
अग्नि, इन्द्र तुम मित्र वरुण तुम, भक्तिभाव उमगाये हैं ॥
वेद के स्वामी अमृतसागर! बुद्धि में सद्भाव भरो।
हे पालक परमेश्वर! मेरे सारे सँकट दूर करो ॥

ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥

ऋ० ७।४१।२॥

प्रातःकाल की मंगल वेला, जय ऐश्वर्य दिलाती है।
सेवनीय भजनीय सोम का, अमर सोम बरसाती है ॥
रवि सम तेज धार कर भगवन्! तेरी आज्ञा पालें हम।
दुष्ट दमन तेरे रक्षण में, जीवन सफल बनालें हम ॥

ओ३म् भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ऋ० ७।४६।३॥

हे नायक! सँसार के स्वामी, सत्यधनों के धाम तुम्हीं।
सर्वप्रकाशक सबके रक्षक, बने अखिल गुण-ग्राम तुम्हीं॥
गौ, घोड़े बलवान् और सन्तान सहित हों धाम सदा।
बुद्धि हमें दो भगवन् ऐसी, जपें तुम्हारा नाम सदा।

ओ३म् उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्। उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम॥ ऋ० ७।४१।४॥

तुम असँख्य धनों के दाता, हो परम पूज्य भगवान् तुम्हीं।
प्रात मध्य सब पावन कर दो, सब में शक्तिमान् तुम्हीं॥
हम उत्कर्ष प्राप्त कर पावें, ऐसे सुन्दर भाव भरो।
देवों की मति देकर प्रभु जी, हम सबको खुशहाल करो॥

ओ३म् भग एव भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥ ऋ० ७।४१।५॥

अमृतमयी सुखद वेला में, शुभ कर्मों का ध्यान करें।
जीवन में ऐश्वर्य भरो प्रभु, अमृतरस का पान करें ॥
हम सब हों सौभाग्यवान् नित, धरते रहें तुम्हारा ध्यान।
सब जग के उपकारी होवें, ऐसी कृपा करो भगवान् ॥

॥ ओ३म् ॥

ब्रह्मयज्ञ (संध्या)

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ *यजु० ३६।३॥*

आचमन मन्त्र

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥

यजु० ३६।१२॥

इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र

ओ३म् वाक् वाक
ओ३म् चक्षुः चक्षुः
ओ३म् नाभि
ओ३म् कण्ठः
ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम्
ओ३म् प्राणः प्राणः
ओ३म् श्रोत्रम् श्रोत्रम्
ओ३म् हृदयम्
ओ३म् शिरः
ओ३म् करतल करपृष्ठे

मार्जन मन्त्र

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि।
ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः।
ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे।
ओ३म् महः पुनातु हृदये।

ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्।
ओ३म् तपः पुनातु पादयोः।
ओ३म् सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि।
ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र

प्राणायाम मन्त्र

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः। ओ३म् जनः।
ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यम्।

अघमर्षण मन्त्र

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥ *ऋ० १०।१९०।१॥*

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥ *ऋ० १०।१९०।२॥*

ओ३म् सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ *ऋ० १०।१९०।३॥*

पुनः 'शन्नो देवी०' मंत्र से तीन आचमन करें।

मनसा परिक्रमा मन्त्र

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्योनमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ *अथर्व० ३।२७।१॥*

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ *अथर्व० ३।२७।२॥*

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ *अथर्व० ३।२७।३॥*

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ *अथर्व० ३।२७।४॥*

ओ३म् ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ *अथर्व० ३।२७।५॥*

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ *अथर्व० ३।२७।६॥*

उपस्थान मन्त्र

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ *यजु० ३५।१४॥*

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम्॥ *यजु० ३३।३१॥*

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥
यजु० ७।४२॥

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम
शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ *यजु० ३६।२४॥*

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ *यजु० ३६।३॥*

समर्पणम् मन्त्र

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां
सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः॥

नमस्कार मन्त्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च॥ *यजु० १६।४॥*

॥ ओ३म् ॥

Dark and Bright Periods of Man's Life

In the beginning of my talk today I told that a lunar month consists of two fortnights - the dark and the bright, In the dark fortnight the moon goes on diminishing day by day and on the last day it totally disappears. But then comes the bright fortnight when it begins to grow bigger and bigger and a day comes when it attains full maturity, and all the darkness is conveyed into light. Similarly in the life of man a dark period appears, but then he must not leave the path of virtue and must boldly face all the calamities which may come before him. And then certainly a day will come when his dark period will come to an end and he will shine forth in his full glory.

O Sages ! I have seen those days when kings and emperors had to face great calamities. But the calamities made those kings and emperors brighter and due to the calamities they are still shining in the pages of history. Such is the case of Maharaja Rama. How great calamities did fall on king Rama, but he stood firmly and faced boldly those calamities and at last conquered Ravana. And so righteous was he that after conquering Lanka he handed over the kingdom to Vibhishan. And when Rama was departing from Lanka, Vibhishan wanted to offer some presents to him. At that time, Rama consulted Lakshmana and sought his advice as to whether Rama should accept the presents of Vibhishan. Lakshmana then said, "O Ram ! If you accept the presents of Vibhishan, it will go against the bounds of morality and

righteousness. It will not befit you if you take back anything from the gift which you have already made over." Then according to the advice of Lakshmana, Rama told Vibhishan, "O Vibhishan ! I have conquered Lanka and gifted it to you. Now it is your duty to rule over Lanka keeping yourself on the path of righteousness. It will go against the bound of morality if I accept anything from it." Thus 0 Sages ! Rama did not accept any thing from Vibhishan keeping himself within the bounds of morality. Men should take a lesson from this. Those who keep themselves within the bounds of morality go on rising up and up, but those who cross over the said bounds are doomed to destruction.

O Sages ! I was talking of the two periods - the dark and the bright. In this connection I want to narrate a story of the Treta age. Once in the Treta age, when king Raghu was the ruler, it did not rain for a long time. The earth became dry and hot and famine appeared. The king was alarmed. At that time Maharishi Udanga began to collect oblation-materiels. He collected the necessary materials for about fifteen days and then performed a grand sacrifice with those materials As soon as the sacrifice was performed the gods were pleased and rain commenced pouring.

Now it so happened that a mongoose which lived in the vicinity arrived there when the sacrifice was over and tried to get itself immersed in the sacrificial remains but the water was not sufficient and only its half portion became of gold. Then the mongoose began to pass its days in the hope that some day another such sacrifice might be performed and he may get a chance to dip itself in the remains of that sacrifice so that the remaining portion of its body may also

become of gold. Day after day went on passing in the hope and the Dwapar age arrived. In the Dwapar age king Yudhishthir performed the Rajsuya Sacrifice. This sacrifice was performed with great splendour. All the royal resources were utilized. The greandeur of the sacrifice was beyond description. The mongoose also arrived there and dipped itself in the remains of the sacrifice. But the remaining portion of its body did not turn into gold. Then the mongoose became sad. Then Maharaja Yudhisthir spoke, “0 Mongoose why are you so sad ? The Mongoose replied, “O Sir ! Once upon a time Maharshi Udanga performed a sacrifice which was not big as yours but it resulted in bringing rains. I tried to get my body immersed in the remains of that sacrifice, but the remains being not sufficient, only one half of my body could be immersed in it and that half became of gold. O Sir ! You have performed such a big sacrifice, I was expecting that the remaining half of my body would also turn into gold if I got myself immersed in the remains of this sacrifice and so I did immerse my body But I was disappointed. The other half of my body could not turn into gold. This is the reason of my sadness. I am unable to understand what sort of sacrifice it is which could not turn the remaining of my body into gold.”

On hearing this Maharaj Yudhishthir was perplexed. Seeing his anxiety the moogoose asked him, “O Sir ! Why are you getting perplexed ?” Maharaj Yudhishthir replied.” The reason of my perplexity is that I performed such a big sacrifice but it could not turn the remaining half of your body into gold. So it seems that my sacrifice has been worthless.”

At that time Maharaj Krishnachandra who was a Yogi having the knowledge of the sixteen Kalas said, “O

Mongoose ! Be quiet. Darker days are still to come when all sorts of ignorance will pervade the world. Human progress will come to stop. At that time even this half of your body which is of gold will not remain so.”

O sages ! Whatever Maharaja Krishnachandra said then has come to be true. As has been stated by Mahanandji on several occasions, in modern times, somebody declares himself to be Brahma, some say that actions are not required to be done in the present age, somebody says that he is the incarnation of Krishna and some other body says that he is a liberated soul. But all these statements are simply misleading the world. People say that Maharaj Krishna had married sixteen thousand wives. But really speaking they do not understand who were those queens with whom Maharaj Krishnachandra passed his days. They were the sixteen thousand hymns of the Vedas in whose company Maharaj Krishna Chandra was delighted to pass his days. He had attained full authority over those hymns and was pleased to ponder over them in a lonely place.

O Sages ! We must think over the teachings of the Vedas today. How do these teachings bring about an all round development of man ? We must know that human development totally depends upon these teachings. These teachings are divided into two parts-the spiritual and the physical. When man is guided by both of them, only then he attains his real development - he achieves his goal of life.

But, I must come back to the story of the mongoose. It has been stated above that half portion of the body of the mongoose turned into gold. Now, there are people who take

the above story to be literally true, and think that really that half portion of its body turned into gold. But in fact it is not so. The body of any living being which is made of flesh and blood cannot turn into gold. The real meaning of the story is that the former sacrifice was so effective that it could be successful in removing half of the impurities of the heart of the mongoose when it came in contact with that sacrifice. But this result could not be produced through the sacrifice performed by king Yudishthir. And the reason of this was explained by Maharaj Krishnachandra. Maharaj Krishna Chandra said that this was due to the change of time. The former sacrifice was performed in the Treta age and the latter in the Dwapar age. Maharaj Krishna Chandra further explained this matter and pointed out the differences which take place in the four ages. He said, "In Satyayug the teachings of the Vedas are fully observed The hearts of the people remain pure. They are not besmeared with the taints of passionate love and hatred. In this age all the four quarters of righteousness shine in their full glory. In the Treta age one quarter of righteousness disappears and only three quarters of it does exist. Then comes the Dwapar age in which only two quarters of righteousness remain and the other two disappear. In this age the decay of righteousness commences. Just as in man's life old age makes its appearance when youth passes away, similarly the old age of righteousness commences to appear in the Dwapar age and the old age completely overtakes it in the Kaliyug. In the age of kali three quarters of righteousness are lost and only one quarter remains. Then righteousness and spiritualism both gradually decline and unrighteousness and materialism take their place. Material sciences play an important part in

the kaliyug. It, however, does not mean that material sciences did not exist in the Satyayug, Treta and Dwapar ages. In the kingdom of Ravana material science had advanced so far that Narainantak, the son of Ravana reached the Moon with the help of his machines. So as stated above in Kaliyug righteousness and spiritualism gradually diminish and they give place to wickedness and spiritual darkness. Really speaking Kaliyug is only another name of ignorance.

O Sages ! The above description of kaliyug given by Maharaj Krishna Chandra is quite true. However, it does not mean that each and every person of Kalyug becomes devoid of true knowledge. Men of wisdom and philosophers also exist in that age. But, of course, their number is very small. Wicked and immoral persons far excel them.

This, in short, is my talk of today. I said in the beginning of this talk that man has to face two kinds of situations in his life. One of them is dark and the other is bright. One is a period of delight, joy and pleasure. One is the outcome of the sinful acts and the other the outcome of the virtous acts performed by a man. These are the two phases of man's life. And whether it be the Satoyug, Treta, Dwapar or Kaliyug the two phases of man's life must appear in his life time, according to the deeds performed by him.

अच्छा भगवन्!

Pravachan–Dated 8-3-1962
Place : B. C. Park
Sarojini Nagar, New Delhi

॥ ओ३म् ॥

The Moon and other Spheres

I am always ready to declare that there is life on the Moon and there is life on Jupiter. In Mars the earth element dominates, and in Jupiter there is predominance of the air and fire elements. Similarly in the polar sphere there is the predominance of the Akriti and Aswani elements while in the Jyestha (Antares) there is the predominance of the earth and fire elements. Solar sphere is said to consist of the fire element. The Vedas contain perfect knowledge. As has been stated by my revered Gurudeva, this world rather the whole of Nature, by virtue of the Supreme consciousness, is automatically functioning within itself and is moving round its axis.

Today I have stated before my revered Gurudeva that the Moon in inhabited by living beings. The living beings are functioning there as a nation. They work there in their offices. They have their own amenities which are enjoyed by the general public there. If man, due to his imperfect knowledge, does not know all these, it is another matter. A man can say how he can accept that there are living beings on the moon, when the scientists of today do not agree to it. The answer is how the scientist of today can agree to it when he, as yet, has not reached that particular place and he himself does not know the facts. Now, if any body says how he care accept what I say as true, I would quote the following extract from the Vedas.

चन्द्र वृत्ते प्रभा अस्ते प्राणी उत रुद्रा आसते ।
सुप्रजा मनुवाञ्छां प्राणी भ्रमणे अस्ति सुप्रजाः॥

i.e. There is light in the sphere of the Moon. Living beings and (the eleven) Rudras are also there. In order to have the desired chain of generations it is necessary that the living beings should take to travelling.

I am saying this on the authority of the Vedas, and not from my own experience. There is no use asking what I have seen through my subtle organs. I have already expressed the Universal truth that wherever the five elements exist, living beings must be present there. What element is prominent where and what are not is another matter As regards the question how many souls do exist in the creation of God, it must be known that as God is infinite, Nature is infinite, so is the number of souls also infinite.

The substance of what I said today is that we must always accept the universal truth and should try to combine our intelligence with the Supreme Consciousness so that, we may be successful in this world and others as well.

Now I am going to end my speech today. If my revered Gurudeva would allow me to speak tomorrow, I shall putforth some more facts about this and other worlds. My words often seem to contain bitterness, but it is so, because they

are realistic. Realism generally carries bitterness with it, though such is not the case with my revered Gurudeva. He has the capacity to convert even bitterness into sweetness, and this is the difference between him and me. But I must stop now with the permission of Gurudeva.

Guru (Laughingly) O Son, your words are beautiful. Bitterness is yours, no doubt. But it should be avoided. It is harmful for the society. However, you were talking about the moon. Do the scientists of today say that there is no life on the moon ?

"Yes Sir".

"On what ground do they say so !"

"They speak according to their instruments."

The outer line of the Moon

Guru - So they speak this on the strength of their instruments. But after a considerable time they will come to learn that there is life on the moon. The currents of life are not easily available. Where the body, line of thinking and eating habits of beings are not quiet favourable, there the perception of life comes after some time and after considerable travelling has been done. But, however, you stated that they have reached a certain spot in the northern part and there, you also stated, exists a certain line. Now that line has been named in the Vedas Swanit, which is said to be the Akruti of the moon. The place where the gravities of both the earth and the moon join together has been called Sombhuk. Similarly, the place where the gravities of the moon and of a certain other celestial sphere named Sombhuk Nidhik join together is called Manantanit line which I shall describe later sometime when describing the meeting lines of various other worlds. O son, time is needed to have a detailed knowledge of all these. Man may be successful in getting all this knowledge, but when ? This you may be able to tell tomorrow. There is however one more point in this connection. In the past, whenever there came a time suitable for having a full knowledge of the moon, it would so happen that a world war would occur. This happened recently at the time of Mahabharat, and earlier at the time of King Ravana, and in Satyayug at the time of King Hiranyakashipu, and still earlier at several times when the materialist scientist made preparations to travel on the Moon, on Mars, on Mercury or on any other planet, a world war took place. This is usual.

O Son, only God knows what will happen in future.

Now the question is what is the benefit of going to the Moon. There may or may not be any benefit. But it is the natural desire of man to try to know the unknown. This is true in the spiritual field and the material field as well. Now the time is over today. You will be given some time tomorrow.

अच्छा भगवन्!

Pravachan–Dated 22-8-1969
Place : Jor Bagh, New Delhi

॥ ओ३म् ॥

श्रद्धा सुमन

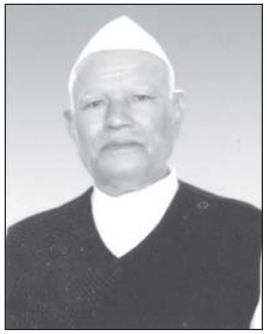

श्री इन्द्रजीत त्यागी

परमपिता परमात्मा की अद्भुत् सृष्टि का चक्र निरन्तर गतिशील रहता है और उसमें प्रत्येक प्राणी मात्र भी अपनी जीवन लीला को अपने कर्मों के अनुसार पूर्ण करते हुए दृष्टि से दूर हो जाता है। जो दिखाई देते हुए भी मानव के लिए एक रहस्य ही बना रहता है। इसी कालचक्र में दिनाँक 28 फरवरी, 2012 को श्री इन्द्रजीत त्यागी, निवासी ग्राम-रासना, मेरठ, 84 वर्ष की आयु में अपने नश्वर शरीर को त्यागकर अमरावती को चले गये।

पूज्यपाद गुरुदेव में अगाध श्रद्धा रखनेवाले और प्रारम्भ से ही निरन्तर आश्रम के कार्यों में सहयोग करते हुए उन्हें गति देने में संलग्न रहे। वैदिक परम्परा से प्रभावित होकर उन्होंने अपने एक पौत्र श्री कमलदीप को बरनावा में ही महानन्द संस्कृत विद्यालय से शिक्षा दिलवाई। जो कि गुरुकुल कांगड़ी से योग में Ph.D. की शिक्षा प्राप्त करके जन-कल्याण के लिए योग का निरन्तर प्रचार व प्रसार करने में संलग्न हैं।

श्री त्यागी जी जीवन में कृषि का कार्य करते हुए भी सामाजिक कार्यों में भी निरन्तर सक्रिय रहे। रासना इन्टर कालिज, सौन्धा, इन्टर कालिज के जीवन भर सदस्य एवम् किसान इन्टर कालिज मुरादनगर के उप-प्रबंधक के पद को भी सुशोभित करते रहे। आप सरल, स्पष्ट, दृढ़ एवम् निष्पक्ष स्वभाव के लिये समाज में विशेष स्थान व महत्त्व रखते थे। उनके द्वारा दिये गये योगदान को ग्राम, समाज एवम् आश्रम आदर्श के रूप में चिर काल तक अपने में अनुभव करता रहेगा।

त्यागी जी के परिवार ने उनकी स्मृति में प्रकाशन के लिए 1100 रु० का सहयोग प्रदान किया है। जिसके लिए समिति समस्त परिवार का हृदय से आभार प्रकट करती है और परम-पिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि इस परिवार को उनकी क्षति सहन करने के लिए आत्मिक बल प्रदान करें।

श्री गाँधी धाम समिति (पजी०)
वैदिक अनुसंधान समिति (पंजी०)

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

1. यौगिक प्रवचन माला (भाग-1)	50.00	32. याग और तपस्या	45.00
2. यौगिक प्रवचन माला (भाग-2)	50.00	33. यागमयी-साधना	30.00
3. यौगिक प्रवचन माला (भाग-3)	50.00	34. यागमयी-सृष्टि	25.00
4. यौगिक प्रवचन माला (भाग-4)	50.00	35. याग-चयन	25.00
5. यौगिक प्रवचन माला (भाग-5)	50.00	36. दिव्य-रामकथा	100.00
6. Yogic Wisdom of Ancient Rishis	50.00	37. ज्ञान-कर्म-उपासना	25.00
7. वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00	38. दिव्य-ज्ञान	35.00
8. आत्म-लोक	25.00	39. महाभारत एक दिव्य दृष्टि	80.00
9. धर्म का मर्म	30.00	40. महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	25.00
10. शंका-निवारण	25.00	41. आत्म-उत्थान	30.00
11. यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्त्व	40.00	42. तप का महत्व	30.00
12. आत्मा व योग-साधना	25.00	43. अध्यात्मवाद	25.00
13. देवपूजा	20.00	44. ब्रह्मविज्ञान	35.00
14. अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	100.00	45. वैदिक-प्रभा	30.00
15. अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	100.00	46. प्रकाश की ओर	35.00
16. अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	100.00	47. कर्तव्य में राष्ट्र	35.00
17. रामायण के रहस्य	35.00	48. वैदिक-विज्ञान	35.00
18. यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00	49. धर्म से जीवन	30.00
19. महाभारत के रहस्य	20.00	50. आत्मा का भोजन	35.00
20. अलङ्कार-व्याख्या	35.00	51. साधना	30.00
21. रावण-इतिहास	40.00	52. त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
22. महाराजा-रघु का याग	25.00	53. यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
23. वनस्पति से दीर्घ-आयु	25.00	54. यौगिक प्रवचन माला (भाग-6)	60.00
24. मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	30.00	55. स्वर्ग का मार्ग	40.00
25. चित्त की वृत्तियों का निरोध	25.00	56. यौगिक प्रवचन माला (भाग-7)	60.00
26. आत्मा, प्राण और योग	20.00	57. माता मदालसा	40.00
27. पञ्च-महायज्ञ	30.00	58. यौगिक प्रवचन माला (भाग-8)	60.00
28. अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	30.00	59. पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज एवम् कर्म भूमि लाक्षागृह	10.00
29. याग-मन्जूषा	25.00		
30. आत्म-दर्शन	25.00		
31. पुत्रेष्ठि-याग और मातृ-दर्शन	25.00		

मासिक सहयोग

श्री हरिराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000	रुपये
श्री विवेक त्यागी, अल्कापुरी, हापुड़	1000	रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद	500	रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद	500	रुपये
श्री विनोद त्यागी, सुपुत्रश्री-जयप्रकाशजी मकनपुर, गाजियाबाद	500	रुपये
श्री पूनम त्यागी, नोयड़ा	500	रुपये
श्री वी. पी. सिंह, वसुंधरा, गाजियाबाद	500	रुपये
डा० शुचि, डॉ. राजीव, आणद, गुजरात	250	रुपये
श्री नानकचन्द, देहरादून	200	रुपये
श्रीमती शशि गुप्ता, नायड़ा,	125	रुपये
डा० ओ. पी. आर्य, आगरा	125	रुपये
श्री गुलजार सिंह, जगतपुरी, कृष्णा नगर, दिल्ली	100	रुपये
श्रीमती वीना त्यागी, अलीगढ़	100	रुपये
श्री राहुल शर्मा, बैगलोर	100	रुपये
श्री पराग शर्मा, नायड़ा	100	रुपये

भूल से

मासिक यौगिक प्रवचन माह मार्च 2012 में भूल से डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश के स्थान पर डा० मधुसूदनेश्वर प्रसाद छप गया है। इसको प्रसाद के स्थान पर प्रकाश ही पढ़ा जाये। समझा जावे। धन्यवाद!

वैदिक अनुसंधान समिति (पंजी०)

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णादत्त जी महाराज

पूज्यपाद गुरुदेव का जन्म लगते असौज तीज सन् 1942 में ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद, जनपद गाजियाबाद (पहले मेरठ) उत्तरप्रदेश में हुआ। इनके पिताजी का नाम श्री नानक चन्द और माता जी का नाम श्रीमती सोना देवी था। लगभग दो मास की अवस्था में श्वासन में लेटने से ही कुछ समय के उपरान्त शिशु की गर्दन दोनों ओर हिलने लगी और होठ फड़फड़ाने लगे। इस क्रिया की पुनरावृत्ति होने पर अज्ञानतावश उपचार प्रारम्भ हो गया। परन्तु उस विशेष अवस्था में जाने की घटनाएँ बढ़ती रहीं और आयु बढ़ने के साथ-साथ मन्त्र-पाठ और प्रवचन स्पष्ट सुनाई देने लगा। छः वर्ष की आयु में इन्हें भयानक चेचक निकली जो इनके मुख-मण्डल पर अपनी स्मृति छोड़ गई।

सात वर्ष की अल्पायु में ही इनकें पिता श्री ने अपने गाँव में ही पशुओं व कृषि के कार्य के लिए नौकर रख दिया। धीरे-धीरे इनके प्रवचनों की क्रिया को मनोरंजन व कौतुक का साधन बनाये जाने लगा। एक दिवस प्रवचन की प्रक्रिया के पश्चात् अत्याधिक पिटाई के कारण लगभग 15 वर्ष की अवस्था में भीषण परिस्थितियों में मध्य रात्रि में गृह को त्यागकर विचरण करते हुए अपनी कर्मभूमि बरनावा जा पहुँचे वहाँ पर आप योग मुद्रा में समाधिस्थ होकर प्रवचन करने लगे, जिसकी सुगन्धी आस-पास में तीव्रता से फैल गई। आपने अपने प्रवचनों के माध्यम से वेद ब्रह्म पारायण यज्ञों का आयोजन करना शुरु कर दिया। जन-समूह के अथाह प्रेम व सहयोग से वरनावा लाक्षागृह पर पाँच यज्ञशालाएँ महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, आश्रम व गऊशाला की स्थापना की, जिसका प्रबन्ध उनके द्वारा स्थापित श्री गाँधी धाम समिति की देखरेख में होता है।

पूज्यपाद गुरुदेव 28 दिसम्बर 1961 में पहली बार दिल्ली प्रवचन के लिए आये। अथाह ज्ञान के भंडार, आध्यात्मिक जगत की महान् व अद्भुत विभूति के प्रवचन सुनने के पश्चात् प्रवचनों को टेप करने का निर्णय लिया गया और कुछ समय के उपरान्त प्रवचनों को टेप करके प्रकाशित करने के लिए पूज्यपाद गुरुदेव की संरक्षकता में वैदिक अनुसंधान समिति का दिल्ली में गठन हो गया। जन्म जन्मान्तरों के शृङ्गी ऋषि की आत्मा ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज इस अज्ञानता के युग में वैदिक संस्कृति का पुनः उत्थान करने के लिए जीवन पर्यन्त लगे रहे। ऋषि-मुनियों ने अनुसन्धान के द्वारा भौतिक व अध्यात्मिक विज्ञान को अपने जीवन में कितना साकार किया है उसकी अथाह चरमसीमा इनके प्रवचनों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस अथाह ज्ञान को मानवता के लिए आचरण व व्यवहार में लाने का सरल व श्रेष्ठ मार्ग प्रदर्शित किया है और साहित्य की गुत्थियाँ स्पष्ट की हैं। जिससे मानव अपना व जनसाधारण का कल्याण करते हुए इस भव सागर से पार हो सकता है।

यह दिव्य आत्मा 15 अक्टूबर 1992 को पचास वर्ष की अवस्था में ब्रह्ममूहुर्त के समय अपने लोकों को गमन कर गई।

वैदिक अनुसंधान, समिति (पंजी०)

वर्ष 40 : अंक : 475
अप्रैल 2012

मूल्यः
पाँच रुपये

प्रकाशक, मुद्रक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश (प्रकाशन मंत्री वै.अ.स.) द्वारा वैदिक अनुसंधान समिति पंजी० के लिए नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली से छपवाकर सी-38, शिवालिक मालवीय नगर, नई दिल्ली-17 से प्रकाशित।
(अवै०) सम्पादक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश, दूरभाष : 26498737

POSTED AT N.D.PS.O ON 10-4-2012

उद्‌बोधन

मैं यह कहा करता हूँ कि बेटा! यह सँसार नाना प्रकार के यन्त्रों से ऊँचा नहीं बनता, ऊँचे-ऊँचे भवनों से भी सँसार ऊँचा नहीं बना करता है। सुन्दर-सुन्दर मार्ग भी हों उससे भी, उससे भी सँसार ऊँचा नहीं बनता, यह सँसार ऊँचा उस काल में बनता है जब मानव के द्वारा चरित्र होता है, महत्ता होती है, पवित्रता होती है। एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पिपासु नहीं होता। उस काल में राष्ट्र भवनों से ऊँचा नहीं बना करता है, वे भवन सुन्दर नहीं होते जिनमें यज्ञ और सदाचार की वार्ता न प्रकट होती हो। वह मार्ग नहीं होता जिन मार्गों पर सदाचारी व्यक्ति भ्रमण नहीं करते। उस मानव में उच्चता कुछ नहीं होती जो केवल अपने में प्रमादी बन जाता है। प्रमादी व्यक्ति संसार में नहीं रहना चाहिए। ऐसा ही हमारे यहाँ परम्परा से माना गया है।

पूज्यपाद-गुरुदेव

(यौगिक प्रवचन माला, भाग-7 प्रवचन दिनाँक 29 जुलाई, 1973)